मलेरियाः चीन की उपलब्धि को मान्यता

पी. बालाराम

मलेरिया मानव इतिहास के प्रारंभ से ही हमारे साथ रहा है। मलेरिया परजीवी सारे थलचर रीढ़धारी जंतुओं को संक्रमित करते हैं। उल्लेखनीय बात यह है कि वे पर्यावरण में वाहक जीवों में जीवित रह सकते हैं। ये वाहक जीव उन्हें एक मेज़बान से दूसरे तक पहुंचाने का काम करते हैं। हाल ही में फ्रांसिस कॉक्स ने मलेरिया परजीवियों और उनके वाहक जीवों की खोज की कहानी का अत्यंत पठनीय वृत्तांत प्रकाशित किया है।

लिखित इतिहास में मलेरिया का प्रथम उल्लेख हमें "ईसा पूर्व 2700 के एक चीनी दस्तावेज़ में, मेसोपोटेमिया से मिली ईसा पूर्व 2000 की एक मिट्टी की पट्टी पर, ईसा पूर्व 1570 के मिस्री पेपायरस दस्तावेज़ में मिलते हैं।" मलेरिया को लेकर आधुनिक शोध कार्य उन्नीसवीं सदी में औपनिवेशिक विस्तार के दबाव में शुरू हुआ था। मलेरिया के कारक प्रोटोज़ोआ वर्ग के परजीवी को सबसे पहले मानव रक्त में एक फ्रांसीसी फौजी अधिकारी चार्ल्स लेवरान ने पहचाना था। लेवरान उस समय अल्जीरिया में पदस्थ था। 1907 में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित लेवरान ने जो खोज की थी, वह कॉक्स के मुताबिक "अभूतपूर्व थी क्योंकि इससे पहले किसी प्रोटोज़ोआ जंतु को मानव रक्त कोशिकाओं में रहते नहीं देखा गया था।" इसके बाद रोनाल्ड रॉस ने यह दर्शाने में सफलता प्राप्त की थी कि मच्छर, विशिष्ट रूप से एनॉफिलीज़ मच्छर, बीमारी के प्रसार के लिए ज़िम्मेदार है। रॉस ने अपना शोध कार्य सिकंदराबाद और कलकत्ता (अब कोलकाता) में किया था। रॉस उस समय (1898-1899 के दौरान) भारत में ब्रिटिश फौज में चिकित्सा अधिकारी था। रॉस की कहानी तो अब एक दंतकथा बन चुकी है। रॉस को भी 1902 में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। इसके पूरी एक सदी बाद ही सबसे घातक मलेरिया के लिए ज़िम्मेदार परजीवी *प्लाज़्मोडियम फाल्सीपेरम* की पूरी जिनेटिक श्रृंखला की खोज की घोषणा हुई थी।

मलेरिया परजीवी बहुत प्राचीन जीव हैं और ये अपने मेज़बानों के साथ-साथ विकसित हुए हैं। बंदर, इन्सान, चूहे, पक्षी, और यहां तक कि छिपकलियां भी इन परजीवियों का आवास बन सकती हैं। हर परजीवी को प्राकृतिक चयन ने कुछ इस तरह ढाला है कि वह एक विशिष्ट मेज़बान के शरीर में जी सकता है और वंशवृद्धि कर सकता है। मनुष्यों में मलेरिया पैदा करने वाले परजीवियों में से *प्लाज़्मोडियम फाल्सीपेरम* सबसे ज़्यादा खतरनाक है। इसकी उत्पत्ति आज भी एक रहस्य है और अनिश्चितता के धुंधलके में ही है। सजीवों के वैकासिक इतिहास का अन्वेषण करने में यह स्थिति काफी आम बात है।

पूरे उप-सहारा अफ्रीका में इस परजीवी की मेज़बान आबादियों के डीएनए विश्लेषण से संकेत मिलता है कि मानव परजीवी "*प्लाज़्मोडियम फाल्सीपेरम* की उत्पत्ति चिंपैंज़ी, बोनोबो या प्रागैतिहासिक इन्सानों में नहीं बल्कि गोरिल्ला में हुई है।" जो सबसे संक्रामक परजीवी इन्सान को संक्रमित करते हैं, वे "एक मर्तबा प्रजाति-पारण की घटना के परिणाम हैं।" प्रजाति पारण से तात्पर्य है कि जब कोई परजीवी एक प्रजाति से किसी दूसरी प्रजाति को संक्रमित करने में सक्षम हो जाए। वैसे परजीवी अपना मेज़बान यदा-कदा ही बदलते हैं, मगर यही क्षमता उन्हें अनुकूलन के योग्य भी बनाती है।

यह सही है कि परजीवियों की उत्पत्ति अनिश्चित है मगर उनके लचीलेपन और अनुकूलन-क्षमता से यह सुनिश्चित हो जाता है कि मलेरिया इक्कीसवीं सदी में भी एक प्रमुख स्वास्थ्य समस्या बना रहेगा। फिलहाल करीब 25 करोड़ लोग मलेरिया से पीड़ित हैं और इसकी वजह से सालाना मृत्यु दर 10 लाख के आसपास है।

जो बीमारियां कीटों से फैलती हैं, उनके संदर्भ में वाहक जंतु नियंत्रण के लिए उनके प्रजनन स्थलों का सफाया करने की ज़रूरत होती है जो कई देशों में एक निहायत मुश्किल काम है। मलेरिया से लड़ाई में हमारी पुरानी साथी मच्छरदानी आज भी बीमारी का प्रसार रोकने का प्रमुख साधन है।

लेवरान और रॉस के बाद हुए मलेरिया अनुसंधान ने एक ओर तो परजीवी और मच्छर के जीव विज्ञान में हमारे ज्ञान में काफी वृद्धि की है, उनके जीनोम का खुलासा किया है, वहीं प्रतिरक्षा विज्ञान में हुए अनुसंधान ने हमें यह समझने में मदद की है कि संक्रमण होने पर इन्सान के शरीर की क्या प्रतिक्रिया होती है। फिर भी, मलेरिया का बहु-प्रतीक्षित टीका एक मरीचिका ही है। डीडीटी ने उम्मीद बंधाई थी कि यह मच्छर के सफाए का एक वैकल्पिक तरीका बनेगा। 1950 व 60 के दशक में डीडीटी छिड़काव के कार्यक्रम चले मगर इन्हें जन विरोध का सामना करना पड़ा क्योंकि डीडीटी के दूरगामी हानिकारक असर देखे गए। रोगवाहक कीटों तथा खेती को नुकसान पहुंचाने वाले कीटों के खिलाफ लड़ाई में डीडीटी और अन्य कीटनाशक दुधारी तलवार साबित हुए हैं।

मलेरिया के कारण मृत्यु का सर्वाधिक खतरा बच्चों पर होता है; खासकर अफ्रीका में। इसके मद्देनज़र मच्छर नियंत्रण की रणनीतियों को लेकर बहुत अलग-अलग राय हैं। तात्कालिक लाभों और दीर्घावधि चिंताओं के बीच संतुलन बनाना आसान काम नहीं है। यह प्रायः विवाद का विषय रहा है। 'रोकथाम इलाज से बेहतर है' के पुराने मुहावरे के आधार पर टीके के विकास और मच्छर नियंत्रण की रणनीति पर बल दिया गया है। मगर मलेरिया के खिलाफ लड़ाई में प्रमुख औज़ार संक्रमित व्यक्ति में परजीवी का सफाया करने का ही रहा है।

तू यूयू

जब स्पैनिश उपनिवेशक दक्षिण अमरीका में पहुंचे, तो जल्दी ही उनका सामना इस बीमारी और स्थानीय लोगों द्वारा इस्तेमाल किए जाने वाले उपचारों से हुआ। सिंकोना वृक्ष की छाल में उपचार के गुण पहचाने गए; सत्रहवीं सदी में यह ज्ञान पेरू में कार्यरत जेसुइट पादरियों द्वारा युरोप लाया गया। सिंकोना की छाल पर काफी अनुसंधान करने के बाद पेलेटियर ने 1830 में इसमें से कुनैन प्राप्त की और 1840 में वुडवर्ड ने इस अणु का संश्लेषण प्रयोगशाला में किया। यह सब तो अब प्राकृतिक उत्पाद रसायन शास्त्र के इतिहास का हिस्सा है। जल्दी ही कुनैन मलेरिया के खिलाफ लड़ाई का प्रमुख हथियार बन गई। कृत्रिम रूप से निर्मित मलेरिया-रोधी दवाइयों के आविष्कार से पहले यही एकमात्र दवाई उपलब्ध थी।

चीन और भारत में चिकित्सा में जड़ी-बूटियों के उपयोग का एक लंबा इतिहास रहा है। मलेरिया के उपचार में भी यहां जड़ी-बूटियों का उपयोग होता आया है। दरअसल, क्लोरोक्वीन नामक दवाई के खिलाफ प्रतिरोधी मलेरिया परजीवी के इलाज के लिए आर्टीमिसिन हमें चीन से ही मिली है। 2011 में लास्कर-डेबाकी क्लीनिकल मेडिकल रिसर्च पुरस्कार तू यूयू को उनके द्वारा संचालित शोध परियोजना के लिए दिया है। इसी परियोजना के फलस्वरूप आर्टीमिसिन की खोज हुई थी। 81-वर्षीय तू यूयू ने इस खोज की बात करते हुए हाल ही में *नेचर मेडिसिन* नामक पत्रिका में 'दी डिस्कवरी ऑफ आर्टीमिसिन (गिंगहाओसु) एंड गिफ्ट्स फ्रॉम चायनीज़ मेडिसिन' आलेख प्रकाशित किया है। तू का शोध कैरियर 1955 में पारंपरिक चीनी चिकित्सा को समर्पित एक संस्थान में शुरू हुआ था। वे बताती हैं कि उनका प्रशिक्षण कार्यक्रम "ऐसे पेशेवरों के लिए विकसित किया गया था जिनकी पाश्चात्य चिकित्सा पर अच्छी पकड़ है" और इसके ज़रिए उनका परिचय 'चीनी चिकित्सा के अद्भुत खज़ाने' से हुआ था"। तू को प्रोजेक्ट 523 पर काम करने का ज़िम्मा सौंपा गया जिसका

नाम उसके शुरू होने की तारीख (23 मई 1967) के आधार पर रखा गया था। यह प्रोजेक्ट एक गोपनीय ऑपरेशन था जिसे सांस्कृतिक क्रांति की शुरुआत में उस समय शुरू किया गया था, जब वियतनाम युद्ध अपने चरम पर था। कहते हैं कि हो ची मिन्ह ने चाऊ एन लाई से वियतनामी फौजियों की रक्षा हेतु मलेरिया की दवा खोजने का अनुरोध किया था और यह अनुसंधान उसी अनुरोध का परिणाम था।

तू जिस समूह की मुखिया थीं उसमें पादप रसायनज्ञ और औषधि विज्ञान के शोधकर्ता थे। इस समूह ने जल्दी ही जड़ी-बूटियों से बने नुस्खों का एक व्यापक सर्वेक्षण शुरू कर दिया था। शुरुआती काम में समूह ने "2000 से ज़्यादा चीनी नुस्खों की जांच की थी और 640 ऐसे नुस्खे खोजे थे जिनमें मलेरिया-रोधी गुण होने की संभावना थी।" तू व उनके साथियों ने "लगभग 200 चीनी जड़ी-बूटियों से प्राप्त 380 से अधिक सतों" का आकलन किया था। वे बताती हैं, "प्रगति एकरूप नहीं रही थी और उल्लेखनीय नतीजे आसानी से नहीं मिले थे।" गिंगहाओ पौधे (*आर्टीमिसिया एनुआ*) से कुछ आशाजनक नतीजे मिले - इसने परजीवी की वृद्धि पर कुछ रोक लगाई। मगर दिक्कत यह थी कि ये नतीजे बार-बार दोहराए जाने योग्य नहीं थे। चीनी दल ने देखा था कि गिंगहाओ के उपयोग का ज़िक्र 340 ईस्वीं के एक ही ग्रंथ में मिलता है - जे होंग की *हैण्डबुक ऑफ प्रिस्क्रिप्शन फॉर इमरजेंसीस*। इस रचना के एक वाक्य ने उपयुक्त सुराग प्रदान कियाः "मुट्ठी भर गिंगहाओ को 2 लीटर पानी में भिगोकर, उसका रस निचोड़कर पूरा पी जाओ।" उस समय तक तू व उनके साथी पौधे का सत निकालने के लिए ऊंचे तापमान का इस्तेमाल करते थे, जिसकी वजह से उसकी सक्रियता नष्ट हो जाती थी। तापमान कम करने पर बात बन गई।

4 अक्टूबर 1971 के दिन चीनी समूह ने एक सत प्राप्त किया जो चूहों और बंदरों में मलेरिया परजीवी के खिलाफ 100 फीसदी कारगर था। इस सत की गैर-विषाक्तता का पता तब चला जब तू व उनके साथियों ने स्वयं यह सत पीया। हायनान में किए गए क्लीनिकल ट्रायल्स से पता चला कि यह दवा उन मरीज़ों में भी कारगर है, जहां क्लोक्वीन नाकाम रहती है। आर्टीमिसिन को शुद्ध रूप में प्राप्त किया गया और 1975 में इसकी असामान्य-सी रासायनिक संरचना पता की गई। अणु की खोज से चलकर दवाई के निर्माण का रास्ता तेज़ी से तय किया गया था।

आर्टीमिसिन की खोज की चर्चा करते हुए तू बताती हैं कि उन्होंने जोसेफ गोल्डस्टाइन का एक आलेख पढ़ा था जिसमें उन्होंने बताया था कि "रचना और ज्ञान प्राप्ति जैव-चिकित्सा विज्ञान में तरक्की के दो अलग-अलग रास्ते हैं।" तू यूयू के लिए आर्टीमिसिन की खोज इलहाम जैसी थी जबकि इसी अणु को औषधि में तबदील करना रचना करने जैसा था।

आर्टीमिसिन प्रोजेक्ट लगभग पूरा का पूरा चीनी सांस्कृतिक क्रांति के दौरान चला था, जो 1966 से 1976 तक पूरे एक दशक चली थी। चाऊ एन लाई और माओ त्से तुंग दोनों ही 1976 में दिवंगत हो गए थे। 1981 में बीजिंग में मलेरिया की रासायनिक चिकित्सा पर एक अंतर्राष्ट्रीय बैठक आयोजित की गई थी। 1985 में *साइन्स* पत्रिका में एक समीक्षा पर्चे में चीन से एक मलेरिया-रोधी दवा के आगमन की घोषणा हुई। इसमें कोई संदेह नहीं कि चीन में आर्टीमिसिन की खोज निहायत कठिन परिस्थितियों में हुई थी। तू और उनके साथियों का पाश्चात्य विज्ञान जगत से कोई संपर्क नहीं था।

हालांकि अधिकांश अग्रणी जैव चिकित्सा विज्ञान अनुसंधान पश्चिम में ही फला-फूला है, मगर मलेरिया की सलीब को हमेशा से ही विकासशील देशों ने ढोया है। बीसवीं सदी तक औपनिवेशिक हितों ने मलेरिया अनुसंधान को गति दी थी; उसके बाद मलेरिया के घर (दक्षिण-पूर्वी एशिया के मैदानों) में अमरीकी फौज के अभियानों ने 1970 के दशक तक मलेरिया अनुसंधान का धरातल तैयार किया। दवा कंपनियों को, अपने व्यापारिक हितों के मद्देनज़र, मलेरिया के क्षेत्र में कभी कोई फायदा नहीं दिखा। फिलहाल मलेरिया के नियंत्रण के प्रयास लगभग पूरी तरह परोपकारी संस्थाओं के वित्त पर आश्रित हैं। मगर मात्र संसाधनों में वृद्धि शायद मलेरिया से लड़ने में पर्याप्त साबित न हो।

परजीवी में प्रतिरोध क्षमता का विकास एक निरंतर खतरा है। प्राकृतिक चयन परजीवी और मच्छर दोनों को

लगातार रासायनिक हमले का प्रतिरोधी बना देता है। *प्लाज़्मोडियम फाल्सीपेरम* में आर्टीमिसिन प्रतिरोध के पहले संकेत थाई-कंबोडिया सीमावर्ती क्षेत्रों से मिलने लगे हैं। वैसे भी यह क्षेत्र ऐतिहासिक रूप से मलेरिया की दवाइयों के खिलाफ प्रतिरोध के उभरने का स्थल रहा है।

आर्टीमिसिन गाथा के अपने विवरण के समापन में तू कहती हैं कि चीनी चिकित्सा के कई अन्य तोहफे भी हो सकते हैं। उनका यह वक्तव्य आयुर्वेद के हिमायतियों जैसा ही लगता है: "चीनी चिकित्सा में ऐसा बहुत कम होता है कि किसी एक विशिष्ट रोग के लिए एक अकेली जड़ी-बूटी का इस्तेमाल किया जाए। आम तौर पर, इलाज का निर्धारण मरीज़ के लक्षणों के समग्र मूल्यांकन के आधार पर किया जाता है और इन लक्षणों के अनुरूप जड़ी-बूटियों का एक नुस्खा तैयार किया जाता है।"

तू यूयू के बारे में मैंने वीकिपीडिया पर भी एक नज़र डाली। उन्हें 'तीन नहीं का प्रोफेसर' बताया गया है - कोई स्नातकोत्तर उपाधि नहीं, विदेशों में अध्ययन/अनुसंधान का कोई अनुभव नहीं, और किसी राष्ट्रीय चीनी अकादमी की सदस्यता नहीं। बहरहाल, आर्टीमिसिन और उसके जीवन रक्षक गुण बेजोड़ पारितोषिक हैं। ***(स्रोत फीचर्स)***